प्राणियों! तुम जिस पद में सो रहे हो वह तुम्हारा पद नहीं है; तुम्हारा पद तो शुद्ध चैतन्यधातुमय है, बाह्य में अन्य द्रव्यों की मिलावट से रहित तथा अन्तरंग में विकार रहित शुद्ध और स्थायी है; उस पद को प्राप्त होओ–शुद्ध चैतन्यरूप अपने भाव का आश्रय करो''।।१३८।।

प्रवचन नं. २८०, श्लोक-१३८, गाथा-२०३, शुक्रवार, श्रावण कृष्ण ३
दिनाङ्क १०-०८-१९७९

समयसार निर्जरा अधिकार, १३८ कलश।

आसंसारात्प्रतिपद–ममी रागिणो नित्य–मत्ताः,
सुप्ता यस्मिन्नपद–मपदं तद्विबुध्यध्व–मन्धाः।
एतैतेतः पद–मिद–मिदं यत्र चैतन्य–धातुः,
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति।।१३८।।

(श्री गुरु संसारी भव्य जीवों को सम्बोधन करते हैं कि–) हे अन्ध प्राणियों!... अन्ध अर्थात् हे प्राणियों! तेरी चीज़ आनन्दमय है, उसे तू देखता नहीं, (इसलिए तू) अन्धा है। हे अन्ध! **अनादि संसार से लेकर पर्याय पर्याय में यह रागी जीव सदा मत्त वर्तते हुए...** मैं मनुष्य हूँ, देव हूँ और मैं क्रोधी हूँ, मैं नारकी हूँ, मैं तिर्यंच हूँ, मैं सेठ हूँ, मैं दरिद्र हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं पण्डित हूँ, इस प्रकार पर्याय-पर्याय में अभिमान किया है। आहाहा! **सदा मत्त वर्तते हुए...** अन्ध। भगवान चैतन्य शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु को जो नहीं देखते, उन्हें यहाँ अन्ध कहा गया है। दूसरी चीज़ को देखते हैं, तथापि अन्ध कहा है। आहाहा!

निज स्वरूप की चीज़ क्या है, उस ओर तेरा झुकाव नहीं, उस ओर तेरा प्रेम नहीं और जो चीज़ तुझमें नहीं—शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी-पैसा, इज्जत, उसमें तेरा मन मत्त हो गया है, मस्त हो गया है। इसलिए भगवान आचार्य अन्ध कहकर सम्बोधन करते हैं। आहाहा! एक ओर ७२ गाथा में भगवानरूप से कहें, भगवान आत्मा! वह पुण्य और पाप के मलिनभाव से प्रभु तू भिन्न है, पृथक् है। आहाहा! और उनमें अपनापन माने और उसका फल संयोग... आहाहा!

अभी भाई ने, रमेशभाई ने गाया नहीं ? 'देव ने द्वारिका नगरी रचकर दी' श्रीकृष्ण के लिये देवों ने द्वारिका (नगरी की रचना की)। सोने के गढ़ और रत्न के कंगूरे। आहाहा! वह जब धग.. धग.. धग.. अग्नि से जली, प्रजा लाखों-करोड़ों जलती है, सुलगती है। श्रीकृष्ण और बलदेव माता-पिता को रथ में बैठाकर बाहर निकालते हैं। ऊपर से हुकम होता है, आकाश में से आवाज आती है, छोड़ दो, माँ-बाप को। ये नहीं बचेंगे। आहाहा! जिनकी हजारों देव सेवा करते थे, वे माता-पिता को बचाने के लिये तैयार नहीं हुए। आहाहा! माता-पिता को रथ में बैठाकर बाहर निकालते थे, वहाँ आवाज आयी, छोड़ दो! तुम दोनों के अलावा कोई नहीं बचेगा। आहाहा! उन कृष्ण और बलदेव की हजारों देव सेवा करें, उनके माता-पिता (को) जलते देखे। सुबक-सुबक कर रोते हैं। आहाहा! उस नाशवान चीज़ को नाशवान के काल में... आहाहा! कौन रख सकता है, प्रभु! आहाहा! सोने के गढ़ और रत्न के कंगूरे सुलगते हैं। आहाहा! वह देवों ने बनायी हुई (नगरी), देवों ने उसे बनायी थी। वे देव भी जलते थी, उसमें रक्षा करने नहीं आये। आहाहा! इसी प्रकार यह शरीररूपी नगरी रची है। आहाहा! जिस समय में इसके छूटने का काल आयेगा, प्रभु! तब तेरे रखने की कोई ताकत नहीं है।

यहाँ यह कहते हैं, वह अपद है। अन्दर है। आहाहा! **सदा मत्त वर्तते हुए जिस पद में सो रहे हैं, वह पद अर्थात् स्थान अपद है-अपद है,...** इस शरीर में तेरी दृष्टि पड़ी है, प्रभु! वह तेरा अपद है, तेरा पद नहीं। आहाहा! शरीर, वाणी, लक्ष्मी, पैसा, इज्जत, कीर्ति, मकान - प्रभु! वह तेरा पद नहीं, उस अपद में तू सो रहा है, नाथ! तेरे पद की सम्हाल कर ले। आहाहा! है ? **सदा मत्त वर्तते हुए जिस पद में सो रहे हैं,...** शरीर में, वाणी में, पैसा, स्त्री, कुटुम्ब, मकान। आहाहा! कोई रखने नहीं आया। आहाहा! धग.. धग.. धग.. सुलगती है। रथ में बाहर निकले और माता-पिता सुलग गये। कृष्ण और बलदेव देखते हैं। कोई शरण नहीं। अन्दर में रानियाँ पुकार करें। जिनकी अर्धांगिनी रानियाँ। हजारों रानियाँ पुकार करें, अरे कृष्ण! हमें निकालो, हमें निकालो। कौन निकाले, भाई! आहाहा! तेरी दृष्टि जहाँ पर के ऊपर अपद में पड़ी है, तेरे पद में क्या चीज़ है, उसकी तुझे खबर नहीं। आहाहा! अपद में तेरी बुद्धि रुक गयी है, प्रभु! आहाहा! आचार्य एक बार भगवानरूप से सम्बोधन करते हैं और एक बार अन्धरूप से (सम्बोधन) करते हैं।

आहाहा! प्रभु! तेरा स्वभाव तो भगवानस्वरूप है, प्रभु! उस रूप से तो आचार्य, भगवानरूप से सम्बोधन करते हैं। परन्तु तू पर्याय में, राग और द्वेष, पुण्य और पाप में और उसके फल में मत्त हो गया है, मस्त हो गया है, पागल हो गया है। आहा! वह चीज़ नाशवान है, भाई! आहाहा! यह रूपवान शरीर लगे, वह एक बार अग्नि में सुलगेगा। यहाँ से अग्नि निकलेगी। आहाहा! धग.. धग.. धग.. धग.. अग्नि सुलगेगी। इसी भव में शरीर की स्थिति! आहाहा! प्रभु! वह तेरी चीज़ कहाँ है? आहाहा! अपद में तेरी चीज़ कहाँ है? है?

दो बार कहा, **अपद है-अपद है,...** प्रभु! यह राग, पुण्य, शरीर, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, मकान, यह जमीन, मकान... आहाहा! वह दो अरब चालीस करोड़ का धनी... पोपटभाई है न? पोपटभाई का साला, इन पोपटभाई का साला। दो अरब चालीस करोड़। वलुभाई! दशाश्रीमाली बनिया था, तुम्हारी जाति का। आहाहा! वह यहाँ...

मुमुक्षु : सम्हालकर रखना नहीं आया होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! क्या रखे, भाई! मुझे दु:खता है, ऐसे रात्रि में डेढ़ बजे कहा। मुझे दु:खता है। घर में चालीस लाख का बँगला, दस-दस लाख के दो बँगले, साठ लाख के तीन बँगले और आहाहा! अभी यह तो वर्तमान। अभी उनका लड़का है। लड़का मुम्बई दर्शन करने आया था। वह कहे 'मेरे पिताजी को आपके दर्शन करने का भाव था।' ऐसा कुछ बोले न! यहाँ आवे इसलिए (ऐसा बोले)। होगा कुछ, एक बार कहता अवश्य था, नहीं? पोपटभाई! एक बार सोनगढ़ जाना है, कहा होगा? परन्तु ढाई अरब रुपये! फट गया प्याला! (मान का पावर चढ़ गया)। आहाहा! द्वारिका सुलगे, उसमें उस समय सुलग गया।

मुमुक्षु : अम्बाजी की मेहरबानी...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल, वापस अम्बाजी को मानता था। स्थानकवासी था और अम्बाजी को मानता था। आहाहा! वह भाई पाँच मिनिट में देह छूट गया। बापू! वह अपद और अनित्य है। भाई! प्रभु! वह तो नाशवान चीज़ है, तेरा अविनाशी पद तो प्रभु! अन्दर है। आहाहा! अरे! अविनाशी भगवान अन्दर (विराजता) है, उस ओर तेरा लक्ष्य भी नहीं, उस पद की ओर तेरा ध्यान भी नहीं और इस अपद में तेरी प्रीति और प्रेम में घुस गया है। आहाहा! (वह) तेरा स्थान नहीं, ऐसा कहा। आहाहा! शरीर, वाणी, कर्म आदि। आहाहा!

वे माता-पिता सुलगते होंगे, तब कृष्ण और बलदेव कौन कहलाते हैं ? आहाहा ! अर्ध (अर्थात्) तीन खण्ड के धनी। माता-पिता सुलगते हैं तो भी छुड़ा नहीं सके, भाई ! आहाहा ! कृष्ण, बलदेव को पुकार करते हैं, बड़े भाई हैं न ? स्वयं तो बड़े, पदवीरूप से वासुदेव बड़े हैं। भाई ! अब हम कहाँ जायेंगे ? आहाहा ! भाई ! यह द्वारिका सुलग गयी। हमने पाण्डवों को तो देश बाहर कर दिया है। भाई ! अपने को जाना कहा। आहाहा ! वह समय तो देखो ! हें ? बलभद्र कहते हैं, भाई ! हमने पाण्डवों को देश बाहर किया है, परन्तु वे सज्जन हैं, भाई ! सज्जन हैं। हम वहाँ जायेंगे, दूसरा कोई साधन नहीं है। अरर. ! जिनकी हजारों देव सेवा करें, वे पुकार करते हैं। भाई ! अब कहाँ जायेंगे ? द्वारिका सुलग गयी। आहा..हा.. ! राजा के ऊपर तो हम स्वामी थे, वे राजा भी अपने को कुछ शरण नहीं देते। उन्हें हमारा दवाब था। जाना कहाँ ? भाई ! बलदेव कहे, बापू ! भाई ! हम वहाँ पाण्डवों के पास जायेंगे, वे सज्जन हैं। अरे ! आहाहा ! वे दोनों कौशम्बी वन में गये। तब कृष्ण कहते हैं, भाई ! मुझमें पैर उठाने की शक्ति नहीं है। मुझे इतनी प्यास लगी है। कृष्ण पुकारते हैं, मुझे इतनी प्यास लगी है कि पैर नहीं उठा सकता। बापू ! भाई ! तुम यहीं रहो। बलदेव कहते हैं, मैं पानी लेने जाता हूँ। आहाहा ! वहाँ पानी का लोटा-बोटा कहाँ था ? बड़ा पत्ता था तो पत्ते को सली डालकर लोटा जैसा बनाकर पानी लेने गये। भगवान ने कहा कि इनके हाथ से ये मरेंगे। क्या नाम कहा ? जरतकुमार... जरतकुमार ! भगवान ने कहा था कि इसके हाथ से (मरण को प्राप्त होंगे), इसलिए बेचारा बारह वर्ष से जंगल में (रहता था)। आहाहा ! श्रीकृष्ण तो... पुण्यवन्त प्राणी, पैर में मणि, रत्न भरे हुए, ऐसे दूर से देखा। पैर पर पैर चढ़ाकर सो रहे थे। कोई हिरण है, ऐसा विचार कर तीर मारा। आहाहा ! तीर मारा और वहाँ खून जमकर हजारों चींटियाँ (एकत्रित हुई), देह छूट गयी। अभी देह छूटने से पहले जरतकुमार आये कि अरे कौन है यह तो ? आहाहा ! भाई ! तुम बारह वर्ष से जंगल में (रहते हो) मेरे हाथ से यह स्थिति ! प्रभु ! मैंने गजब किया, काल किया। आहाहा ! मुझे अब कहाँ जाना ? श्रीकृष्ण कहते हैं, भाई ! यह कौस्तुभमणि अरबों रुपये की कीमत का वासुदेव की अंगुली में होता है। कौस्तुभमणि। यह ले जा, पाण्डवों के पास जा, वे तुझे रखेंगे कि यह मेरा चिह्न है। तीन खण्ड में कौस्तुभमणि किसी के पास नहीं है, इसलिए यह निशानी लेकर जा। भाई ! तुझे रखेंगे। आहाहा ! यह जहाँ वहाँ से छूटता है, तब वहाँ देह छूट जाने का

(प्रसंग बना) कौशम्बी वन में कृष्ण अकेले। आहाहा! कोई वहाँ शरण नहीं। आहाहा! उस अपद में शरण कहाँ है? प्रभु! आहाहा! उसकी सम्हाल करने तू जाता है। देह और वाणी की, बाह्य पदार्थ की। आहाहा! वह अपद है न, प्रभु! वह तेरा रहने का स्थान नहीं। आहाहा! तेरा बैठने का स्थान नहीं, प्रभु! आहाहा! तेरा बैठने का स्थान अन्दर अविनाशी भगवान है। आहाहा!

'विबुध्यध्वम्' ऐसा तुम समझो। (अपद शब्द को दो बार कहने से अति करुणाभाव सूचित होता है।) करुणा.. करुणा.. करुणा..। सन्तों की भी करुणा! अरे रे! प्रभु! मैं मनुष्य हूँ और मैं देव हूँ, मैं पैसेवाला हूँ, मैं राजा हूँ, मैं जमींदार हूँ, मैं सेठ हूँ। अरे प्रभु! यह क्या करता है? आहाहा! प्रभु! वह चीज़ तो नाशवान है। वह तेरा अपद है, वहाँ तेरे रहने का स्थान नहीं है, वह बैठक का स्थान नहीं है, प्रभु! आहाहा! शराब पीकर जैसे कोई मनुष्यों ने विष्टा की हो और वहाँ जाये, आहाहा! दूसरा व्यक्ति आया और कहा अरे! राजा तुम? शराब पिया हुआ। मनुष्यों की विष्टा थी, वहाँ सो रहा था। आहाहा! भाई! यह क्या? तुम्हारा स्थान तो राज्य में स्वर्ण का सिंहासन है और यह क्या? परन्तु शराब पिये हुए। इसी प्रकार मोह को पीये हुए अज्ञानी। आहाहा! अपना आनन्दकन्द प्रभु, सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप में जाकर इस अपद में तेरा स्थान (मानकर) सन्तुष्ट होकर पड़ा है, प्रभु! आहाहा!

'इतः एत एत' इस ओर आओ-इस ओर आओ,... आहा..हा..! है? यह दो बार कहा। अपद-अपद, दो बार कहा। आहाहा! यहाँ आओ, यहाँ आओ। प्रभु! यहाँ अन्दर आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! शुद्ध परमात्मस्वरूप, वह राग से रहित प्रभु तेरा स्थान यहाँ है, यहाँ आओ, यहाँ आओ। आहाहा! है? **इस ओर आओ-इस ओर आओ,...** जहाँ पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्यरूप से विराजमान है। आहाहा! अतीन्द्रिय चैतन्य चमत्कारिक शक्तियों का सागर पड़ा है। प्रभु! यहाँ आओ न, आओ न! दो बार कहा। ए... आओ, आओ। आओ.. आओ। आहाहा! है? **(यहाँ निवास करो,)...** यहाँ निवास करो। वास उपरान्त निवास। आहाहा! निवास करो। वहाँ रहो कि जिसमें से निकलना न पड़े, इस प्रकार निवास करो, ऐसा कहते हैं। वास, निवास। बसना और यह तो निवास। विशेष से अन्दर भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु है न, वहाँ आओ न! वहाँ आओ न अन्दर। आहाहा! सन्त दिगम्बर मुनि, अमृतचन्द्राचार्य। आहाहा! उस समय चलते सिद्ध!

हजार वर्ष पहले दिगम्बर सन्त ऐसे अमृतचन्द्राचार्य की यह टीका! अभी भरतक्षेत्र में अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! ऐसी टीका! एक-एक शब्द में कितना भरा है! आहाहा! समझ में आया? यह तो टीका उपरान्त कलश बनाया है।

यहाँ आओ **(निवास करो,)**... आहाहा! **'पदम् इदम् इद' तुम्हारा पद यह है- यह है,...** आहाहा! तीन बातें कही। एक तो 'अपद, अपद' दो बार कहा। यहाँ आओ, आओ, दो बार (कहा) और तुम्हारा पद यह है, यह है। यह दो बार (कहा)। है? **'पदम् इदम् इद' 'पदम् इदम् इद'** आहाहा! बहुत सरस कलश आया है। भगवान अन्दर है न, बापू! आहा! चैतन्य चमत्कारिक चीज़ अन्दर प्रभु भगवत्स्वरूप है, वहाँ आओ, वहाँ आओ। आहाहा! ये (बाह्य चीज़ें) अपद है, अपद है। शरीर, वाणी, लक्ष्मी, कीर्ति, इज्जत, यह सब अपद है, अपद है। दो बार। यहाँ आओ.. आओ, दो बार। तुम्हारा पद यह है, यह है। दो बार। प्रभु! तेरा पद तो अन्दर आनन्द अविनाशी पद है न! आहाहा!

जहाँ शुद्ध-शुद्ध चैतन्यधातु... यह दो बार। शुद्ध-शुद्ध चैतन्यधातु। शुद्ध द्रव्य से और पर्याय से शुद्ध है। आहाहा! द्रव्य से और गुण से वह शुद्ध है। आहाहा! शुद्ध-शुद्ध। पर्याय लें तो कारणशुद्धपर्याय। बाकी गुण और द्रव्य। द्रव्य से शुद्ध और गुण से शुद्ध है। यह चैतन्यधातु है न, प्रभु! जिसने चैतन्यपना धार रखा है न! उसने राग और पुण्य धार नहीं रखा। भगवान अन्दर चैतन्यधातु ने चैतन्यपना धार रखा है। आहाहा! उसने अतीन्द्रिय आनन्द को धार रखा है, प्रभु! आहाहा! वह शुद्ध-शुद्ध चैतन्यधातु।

स्व-रस-भरतः की.. **भरतः** अर्थात् **अतिशयता के कारण...** आहाहा! जिसके रस में इतना रस है, अतिशय। आनन्दरस, ज्ञानरस, शान्तरस, स्वच्छतारस, प्रभुतारस - ऐसे अनन्त गुण का रस। आहाहा! निजरस की अतिशयता। **भरतः** है न? विशेषता। ऐसा निजरस भरा है कि उसके जैसा कहीं नहीं है। आनन्दरस जिसमें-प्रभु आत्मा में है। आहाहा! अतीन्द्रिय चैतन्यधातु जिसकी है। धातु अर्थात् धारण किया है। उसने तो चैतन्यपना ही धारण किया है। राग और पुण्य उसने धारण नहीं किया, आहाहा! (यहाँ तक) जाना। कहो, पंकजभाई! इस जवाहरात के धन्धे में से निकलना और यह सब। आहाहा! बहुत आमदनी हो, पीछे हम लाख-दो लाख दान में देंगे। परन्तु उसमें... वह भी शुभभाव है। वह भी अपद है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : दुनिया को, संसार को सुलगा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार पूरी चीज़ ही दु:खमयी है। शरीर, वाणी, कर्म, पैसा, इज्जत, कीर्ति सब दु:ख के निमित्त हैं तो दु:खमयी कहे जाते हैं। आहाहा! ऐसे पाँच-पच्चीस लाख महीने-महीने की आमदनी हो, आहाहा! मस्तिष्क—प्याला फट जाये (अभिमान चढ़ जाये)। भाई! तू पागल हो गया है। जो तेरी चीज़ नहीं है, वहाँ शराब पीकर जैसे विष्ठा के स्थान में बैठे; वैसे प्रभु! तूने मिथ्यात्व की महा मदिरा की है। आहाहा! कि जो स्थान तेरा पद नहीं है, वहाँ तू सो रहा है। आहाहा!

शुद्ध चैतन्यधातु **'स्व-रस-भरत:'** स्व-रस से भरा पड़ा है। स्व-रस की विशेषता से, अतिशयता से भरा पड़ा है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात सुनने को मिलती नहीं। हैं? इसे कहाँ जाना? आहा! और यह तो आत्मा के हित की बात है, प्रभु! समझ में आया? यह पंच महाव्रत के परिणाम और उनमें रहना, वह सब अपद है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तेरा पद तो शुद्ध-शुद्ध चैतन्यधातु अन्दर विराजमान है, भगवान! आहा! कर्म के निमित्त से राग हो, उससे भी तेरी चीज़ भिन्न है। आहाहा! तेरी चीज़ को राग की लार चिपटती नहीं, छूती नहीं। दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के परिणाम, प्रभु! तेरी चीज़ को स्पर्श नहीं करते। ऐसी तेरी चीज़ अन्दर निर्लेप पड़ी है। आहाहा! आनन्द का सागर उछलता है, वहाँ जा न, नाथ! वहाँ आ न, प्रभु! आहाहा! यह मुनियों की करुणा तो देखो! हैं? आहाहा!

'स्व-रस-भरत:' निज शक्ति के रस के आनन्दादि अनेक गुण। अस्तित्व का आनन्द, वस्तुत्व का आनन्कद, जीवत्व का आनन्द, ज्ञान का आनन्द, दर्शन का आनन्द, शान्ति का आनन्द। शान्ति अर्थात् चारित्र का (आनन्द), ऐसे अनन्त गुण का आनन्द, ऐसे रस से भरा हुआ पड़ा है न, प्रभु! अन्दर। आहाहा!

स्थायीभावत्व को प्राप्त है... क्या कहते हैं? जब यह वस्तु—शरीर, राग नाशवान है, तब यह (आत्मा) स्थायीभाव है। स्थिर भाव अन्दर पड़ा है, स्थायी रहनेवाला है, शाश्वत् रहनेवाला है। आहाहा! कहाँ करोड़पति, सेठ, इसके माँ-बाप, अरे..! मरकर कहाँ पड़े होंगे? हरितकाय में, कन्दमूल में, लहसुन कन्द में पड़े होंगे, बापू! आहाहा! यहाँ सब कुटुम्ब कबीला और पाँच-पच्चीस लाख के मकान हों और मौज मानता हो। मानो, ओहोहो! उसमें पुत्र का विवाह हो, और उसमें दो-पाँच लाख खर्च करना हो और...

आहाहा! फलाफूला देखो इस संसार में! इसकी माँ भी गीत गाते-गाते कण्ठ बैठ जाये। दूसरे कहें कि माँ! परन्तु थोड़ा बोलो न! आहाहा! राग के रसिया के राग, कण्ठ बैठ जाये तो भी शोर किया करे। मूर्ख! आहाहा! प्रभु! तेरा रस तो यहाँ स्थायी भाव, यह है न! वे तो सब अस्थायी हैं। आहाहा! श्लोक बहुत अच्छा आ गया। निर्जरा अधिकार पढ़ते थे न? आहाहा!

स्थायीभावत्व को प्राप्त है अर्थात् स्थिर है-... भगवान अन्दर स्थायीभाव, स्थायी अविनाशी ध्रुव। ध्रुवधाम प्रभु तेरा पद है। आहाहा! उस पद में आ जा। अपद से छूट जा। आहाहा! जन्म-मरणरहित होना हो तो अपद से छूटकर पद में आ जा। आहाहा! भगवान तेरी चैतन्यधातु निजरस से अन्दर भरी पड़ी है। आनन्द का रस! आहाहा! जैसे पूरणपोली होती है न? पूरणपोली नहीं? ऐसे घी में डालते हैं। सराबोर, सराबोर (घी) टपकता है। इसी प्रकार भगवान आनन्द के रस से अन्दर भरा पड़ा है। अन्दर रस टपकता है। यदि तेरी नजर कर तो उसमें रस टपकता है। आहाहा! अरे रे! ऐसा तेरा तत्त्व, प्रभु! उसे भूलकर कहाँ तू पड़ा है? कहाँ तेरी दृष्टि पड़ी है? आहाहा! स्थायी भाव को प्राप्त अर्थात् स्थिर, अविनाशी है। आहाहा!

यहाँ 'शुद्ध' शब्द दो बार कहा है, जो कि द्रव्य और भाव दोनों की शुद्धता को सूचित करता है। द्रव्य शुद्ध है और भाव भी शुद्ध है। आहाहा! भाववान द्रव्य तो शुद्ध है परन्तु भाववान का भाव भी शुद्ध है। आहाहा! यह भाव पुण्य-पाप के भाव नहीं। वे तो अशुद्ध, मैल और दुःख हैं। आहाहा! भाववान भगवान का भाव शुद्ध आनन्दादि भाव, वह तेरा है। वह स्थायी भाव को प्राप्त है, स्थिर भाव है। अनादि-अनन्त अनन्त वह तो स्थिररूप है। जिसमें हलचल है नहीं। आहाहा! प्रभु! ऐसा तेरा ध्रुवधाम पड़ा है न! आहाहा! उस तेरी नगरी में आ। इस पर नगरी को छोड़, प्रभु! आहाहा! हमारा नगर है, हमारा गाँव है। आहाहा!

समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्न होने के कारण... द्रव्य और भाव का स्पष्टीकरण करते हैं। **समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्न होने के कारण आत्मा द्रव्य से शुद्ध है और पर के निमित्त से होनेवाले अपने भावों से...** अपने भावों से। देखो! पुण्य-पाप के भाव पर्याय में होते हैं, अपने भाव से भी भिन्न है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! कोई वाँचन

नहीं, श्रवण नहीं, मनन नहीं और ऐसा का ऐसा धन्धे में और स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब में लवलीन, लवलीन, मस्त, पागल जैसा दिखे। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ है? कहाँ जाता है तू? तुझे खबर नहीं। आहाहा! इस वैश्या के घर में जाये तो व्यभिचारी होता है। इसी प्रकार राग और पर को (अपना) मानता है तो तू व्यभिचारी होता है, प्रभु! आहाहा! जो चीज़ तेरी नहीं है, उसे अपनी मानना, वह व्यभिचार है। आहाहा! जेठालालभाई! ऐसी बातें हैं, प्रभु! आहाहा! आहाहा! **भाव से शुद्ध है।**

भावार्थ : दृष्टान्त देते हैं। **जैसे कोई महान् पुरुष मद्य पान करके...** देखा? शराब पीकर। आहा! हमने तो देखा है, राजकोट में जंगल बाहर जाते थे तो एक (व्यक्ति) शराब पीकर निकलता है। राजकोट के बाहर बड़ा शराब का पीठ है। उस ओर से हम जंगल-दिशा को जाते थे। एक शराब पीकर निकला था। ऐसे पागल जैसा, पागल। अरे! कहा। आहाहा! व्यक्ति ठीक था, ऐसे परन्तु शराब पिया हुआ; इसलिए कुछ भान नहीं होता। आहाहा! राजकोट में गाँव के बाहर... आहाहा! इसी प्रकार यह तो प्रत्येक शहर में, प्रत्येक गाँव में, दारू पिये हुए हैं, कहते हैं और वह मिथ्यात्व की शराब पिये हुए, मद में आये हुए, हम लक्ष्मीवाले हैं, हम सेठ हैं, हम राजा हैं। आहाहा! स्त्री कहे हम रानी हैं, पटरानी हैं। आहा! सेठानी हैं, अरे प्रभु! तू यह क्या करता है। आहाहा! वह कहाँ तेरी चीज़ है कि तुझे अभिमान हुआ? आहाहा!

महान् पुरुष मद्य पान करके मलिन स्थान पर सो रहा हो... मलिन स्थान हो, वहाँ (सो रहा हो)। **उसे कोई आकर जगाये-और सम्बोधित करे कि यह तेरे सोने का स्थान नहीं है;...** सोने का स्थान अर्थात् स्वर्ण का नहीं। सोने का अर्थात् सोने का (नींद का) स्थान। **तेरे सोने का स्थान नहीं है; तेरा स्थान तो शुद्ध सुवर्ण...** लो, ठीक! तेरी **स्थान तो शुद्ध सुवर्णमय धातु से निर्मित है,...** आहाहा! सोने का मकान है। बौद्ध में अभी है। बौद्ध में सोने का मन्दिर है। अरबोंपति बस्ती बड़ी है और पैसेवाले बहुत हैं। सोने का मन्दिर है। अभी... अभी कलिकाल में। आहाहा!

मुमुक्षु : दीवारें भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। परन्तु उसमें क्या है? सोने का क्या, रत्न का आ जाये। ऐसा कोई पुण्य का योग होवे तो अरबों रत्न जमीन में से निकले। उसमें क्या? वह चीज़ क्या

है ? आहा ! यह रत्न चैतन्य अन्दर में भरे हैं। आहाहा ! एक बार राग से भेदज्ञान करके रत्न को सम्हाल। आहा ! पर से तो ठीक परन्तु राग से भिन्न कर, प्रभु ! आहाहा ! पहली सम्यग्दर्शन की बात है। फिर चारित्र तो कहाँ था ? वह तो कोई दूसरी बात है। आहाहा !

यहाँ तो आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, चैतन्य (धातु से) बना हुआ है। **शुद्ध सुवर्णमय धातु से निर्मित है,...** यह बाहर का दृष्टान्त। **अन्य कुधातुओं के मिश्रण से रहित शुद्ध है और अति सुदृढ़ है;...** आहा ! कहाँ ? वह मद्य पीकर विष्टा में सो रहा है और उसे कुछ भान ही नहीं है कि इस विष्टा में (सो रहा हूँ)। प्रभु ! तू यहाँ कहाँ सो रहा है ? तेरे बँगले में मजबूत स्थान पड़ा है न ! सोने का सिंहासन है न, वहाँ जा। यह लौकिक बात, दृष्टान्त (कहा)। आहा ! **अति सुदृढ़ है; इसलिए मैं तुझे जो बतलाता हूँ, वहाँ आ और वहाँ शयनादि करके आनन्दित हो;...** वहाँ शयन करो।

इसी प्रकार ये प्राणी अनादि संसार से लेकर... राग-द्वेष, पुण्य-पाप, उसके फल, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, धूल। आहाहा ! उसे **भला जानकर,...** आहा ! हम लक्ष्मीवान हैं, इज्जतवान हैं, हमारी बड़ी इज्जत है। आहा ! हमारे लड़के को बड़े-बड़े करोड़पतियों की आती है। परन्तु क्या है, प्रभु यह तुझे ? यह पागलपना तुझे क्या हुआ ? क्या हुआ ? आहाहा ! यह नाशवान सुलगेगा, तब बापू ! चला जायेगा, बापू ! आहाहा ! इस नाशवान का काल आयेगा। नाशवान तो अभी भी है परन्तु पृथक् पड़ने का अवसर आयेगा तो, आहाहा ! ये सब बँगले और स्त्री-पुत्र रोते रहेंगे (और तू / आत्मा) चला जायेगा। आहाहा !

बालक जन्मता है, तब पहले आँख नहीं उघाड़ता। देखा है ? सवा नौ महीने पेट में रहा, ऐसे आँख बन्द हो। बाहर जन्मे, तब पहले मुख खोलता है। मुख उघाड़कर पहले ऊं... करता है। आँखें बन्द रखता है। समझ में आया ? ऐसा कहते हैं कि यहाँ स्व को देखने की आँखें बन्द करके रोता है, बस ! यह मेरा है, यह मेरा है, यह मेरा है। बालपन से रोता आया, पश्चात् भी तू तो रोता है। आहाहा ! एक बार समाचार-पत्र में ऐसा आया था कि बालक जन्मे तब, उसे उसकी माँ अभी देखे कि यह लड़की है या लड़का, वहाँ मुँह फाड़कर ऊं... करे। आँख नहीं उघाड़े। यह सबको हुआ है, हों ! उस समय। इसी प्रकार यह अनादि से अज्ञानी, प्रभु को देखने की आँख बन्द करके यह मेरे, यह मेरे—ऐसे रोया करता है, रुदन करता है। आहाहा !

यहाँ आ जा, प्रभु! आहाहा! **रागादि को भला जानकर, उन्हीं को अपना स्वभाव मानकर,...** चाहे तो शुभराग हो। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह भाव अस्थान है। आहाहा! **उसी में निश्चिंत होकर सो रहे हैं...** उन्हें ही अपना स्वभाव मानकर निश्चिंत होकर सो रहे हैं। **स्थित हैं, उन्हें श्री गुरु करुणापूर्वक सम्बोधित करते हैं-जगाते हैं-सावधान करते हैं...** तीन अर्थ लिये हैं। सम्बोधित करते हैं, जगाते हैं, सावधान करते हैं। हे **अन्ध प्राणियों!** आहाहा! **तुम जिस पद में सो रहे हो, वह तुम्हारा पद नहीं है;...** आहाहा! राग, दया-दान के राग से लेकर सब चीज़ अपद है, नाशवान है, तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा!

तुम जिस पद में सो रहे हो, वह तुम्हारा पद नहीं है; तुम्हारा पद तो शुद्ध चैतन्यधातुमय है,... आहाहा! तुम्हारा स्थान, स्वभाव अन्दर शुद्ध चैतन्यधातु, शुद्ध चैतन्यधातु। शुद्ध चैतन्य जिसने धार रखा है, वह तेरा पद अन्दर है। आहाहा! **बाह्य में अन्य द्रव्यों की मिलावट से रहित...** यह मिलावट करते हैं न? आहाहा! मिर्च, मिर्च चरपरी मिर्च होती है न, मिर्च में पपीते के बीज, पपीते के बीज मिर्ची जैसे होते हैं, वे अन्दर डालते हैं। मिलावट, मिलावट करते हैं। यह तो मैंने दृष्टान्त दिया। ऐसा सबमें (होता है)। मिर्च की ऊपर वह भरे और अन्दर बीज भरे। चावल में कणी (टुकड़े) भरे। चावल में बहुत कणी हो, कणी समझ में आया? बारीक चूरा। दूसरे को देना हो तो सेठ ऐसा हो। दुकान भरी हो, बम्बी हो बम्बी, बम्बी समझ में आया? चावल निकालने का। ऐसे नहीं मारे। ऐसे मारे तो चावल और कणकी दोनों निकले। ऐसे मारे। यह सब (देखा है न।) इसलिए पूरे-पूरे चावल निकले। अन्दर कणी का पार नहीं, परन्तु कपट। ये बनिये ऐसा करते हैं, सब देखा है, हों! पूरी दुनिया देखी है।

हमारे तो अन्तिम, कहा था न? (संवत्) १९६८ में अन्तिम बार माल लेने हम मुम्बई गये थे, तो चार सौ मण चावल लिये थे। चार सौ मण। अन्तिम व्यापार। फिर दुकान छोड़ दी। चार सौ मण चावल और खजूर का वाडिया, क्या कहलाता है वह? खजूर का वह बहुत लिया था मुम्बई से, परन्तु सीधी बात यहाँ, हों! आड़ी-टेड़ी (बात) नहीं। यहाँ तो सीधा बताते हैं, देख भाई! यह है चावल। थोड़ी कणी है और वे कपट करनेवाले, वह लोहे की बम्बी हो, ऐसे पोली-पोली हो। ऐसे रखे, इसलिए चावल आवे और कणी न

आवे। अरे! प्रभु! तू क्या करता है यह? यह तेरा धन्धा किस प्रकार का? आहाहा! पंकजभाई! सबको देखा है, हों! एक वकालात नहीं की, भाई कहते हैं वह। परन्तु वकालात को देखा पूरा है।

हमने एक वकील किया था। (संवत्) १९६३ के वर्ष में अफीम का झूठा केस आया था। बड़ोदरा में एक बड़ा वकील रखा था। उस वकील के पास जाते, वहाँ वह कहे, वहाँ क्या कहेंगे, अमुक कहेंगे। वह सब कहे। बड़ोदरा.. बड़ोदरा.. है न? दरवाजा है न? दरवाजे के बाद इस ओर के मकान में वकील रहता था। एक बार दूसरा होगा, तब वकील। वकील के पास जाते थे, हमने हमारे लिये वकील रखा था। यह सत्रह वर्ष की उम्र की बात है। दस और सात। १९६३ का वर्ष। आहाहा! परन्तु वे सब, वकील भी सब... वह जिस मकान में हमारा केस चला था, १९६३ में, उस मकान में मैंने अभी व्याख्यान दिया था। बड़ोदरा का तालाब है न? उसके पास बड़ा है न... क्या कहलाता है वह? कोर्ट, बड़ी कोर्ट। बड़ोदरा दरवाजा बाहर और तालाब है, वहाँ हमारा १९६३ में केस चला था। वहाँ अभी व्याख्यान दिया था। सब लोग आते थे, अमलदार, अधिकारी। अपने केशवलाल एक प्रोफेसर थे न? गुजर गये। केशवलाल भट्ट। वे आये थे। सब थे, सब वकील थे। ऊपर कोर्ट चलती थी, नीचे व्याख्यान चलता था। उन लोगों को छुट्टी दी। भाई! महाराज आये हैं और लोग ज्यादा भरते हैं, अन्यत्र कहीं मिलता नहीं, वहाँ पढ़ो। आहाहा! परन्तु वे कोर्टवाले भी सुनकर, बेचारों को कुछ खबर नहीं होती। क्या कहते हैं, यह क्या करते हैं? यह भगवान रागरहित चीज़ है तो वे कहें, यह क्या कहते हैं परन्तु?

हमने तो कभी भी रागरहित चीज़ देखी नहीं और यह क्या कहते हैं? परन्तु तूने नजर ही कहाँ की है? जहाँ निधान है, वहाँ नजर नहीं की और राग-द्वेष, पुण्य-पाप और (उनके) फल (पर) तेरी नजर है। नजरबन्दी हो गयी है, नजरबन्दी हो गयी है। तुझे नजरबन्दी हो गयी है। नजरबन्दी नहीं कहते? तुझे पर में नजरबन्दी हो गयी है। अपनी नजर करने का समय रहा नहीं। आहाहा!

अन्य द्रव्यों की मिलावट... मिलावट, देखा न? आहाहा! **तथा अन्तरंग में विकार रहित...** आहाहा! खाण्ड की आती है न? पूरी चार-चार मण की बोरी। एक बार हमारी खाण्ड की बोरी में से माँस के लोथड़े निकले। बोरी में से। लोग कपट करे, मिलावट

(करे), दूसरी मिलावट करते हुए। ऐसा खोला और लोगों को हम खाण्ड निकालकर देते थे, वहाँ अन्दर से माँस निकला। ओहोहो! उसने कपट किया है। दुकान पर सब देखा है। आहाहा! यह सब मिलावट है। भगवान आत्मा में राग, वह माँस समान है। उसकी मिलावट करते हैं। खाण्ड के साथ माँस; वैसे भगवान अमृत के रस का सागर नाथ, उसके साथ राग की मिलावट, माँस की मिलावट करते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! तेरी चीज़ मिलावटरहित है।

अन्तरंग में विकार रहित शुद्ध और स्थायी है;... स्थिर ध्रुव, ध्रुव, ध्रुव स्थिर है। **उस पद को प्राप्त होओ...** प्रभु! उस पद को प्राप्त कर। आहाहा! **शुद्ध चैतन्यरूप अपने भाव का आश्रय करो।** शुद्ध चैतन्यरूप और भाव, देखा। भाववान आत्मा, चैतन्यभाव। आहाहा! उस भाव का आश्रय करो। अन्तर ज्ञायकभाव से भरपूर प्रभु का आश्रय करो, तब तेरे कल्याण का पन्थ खुलेगा, तब तुझे धर्म होगा। आहाहा! यहाँ तो अभी बाहर के क्रियाकाण्ड में, बस! महाव्रत और व्रत और यह लिया और यह किया, यह छोड़ा और यह रखा। आहाहा!

गाथा-२०३

किन्नाम तत्पदमित्याह -

आदम्हि दव्वभावे अपदे मोत्तूण गिण्ह तह णियदं।
थिरमेगमिमं भावं उवलब्भंतं सहावेण।।२०३।।

आत्मनि द्रव्यभावानपदानि मुक्त्वा गृहाण तथा नियतम्।
स्थिर-मेक-मिमं भाव-मुपलभ्यमानं स्व-भावेन।।२०३।।

इह खलु भगवत्यात्मनि बहूनां द्रव्यभावानां मध्ये ये किल अतत्स्वभावेनोपलभ्यमानाः, अनियत-त्वावस्थाः, अनेके, क्षणिकाः, व्यभिचारिणो भावाः; ते सर्वेऽपि स्वयमस्थायित्वेन स्थातुः स्थानं भवितु-मशक्यत्वात् अपदभूताः। यस्तु तत्स्वभावेनोपलभ्यमानः, नियतत्वावस्थः, एकः नित्यः, अव्यभिचारी भावः, स एक एव स्वयं स्थायित्वेन स्थातुः स्थानं भवितुं शक्यत्वात् पदभूतः। ततः सर्वानेवास्थायिभावान् मुक्त्वा स्थायिभावभूतं परमार्थरसतया स्वदमानं ज्ञानमेकमेवेदं स्वाद्यम्।।२०३।।

अब यहाँ पूछते हैं कि (हे गुरुदेव!) वह पद क्या है? उसका उत्तर देते हैं-

जीव में अपद्भूत द्रव्यभाव को, छोड़े ग्रह तू यथार्थ से।
थिर, नियत, एक हि भाव यह, उपलभ्य जो हि स्वभाव से।।२०३।।

गाथार्थ : [आत्मनि] आत्मा में [अपदानि] अपदभूत [द्रव्यभावान्] द्रव्यभावों को [मुक्त्वा] छोड़कर [नियतम्] निश्चित, [स्थिरम्] स्थिर, [एकम्] एक [इमं] इस (प्रत्यक्ष अनुभवगोचर) [भावम्] भाव को- [स्वभावेन उपलभ्यमानं] जो कि (आत्मा के) स्वभावरूप से अनुभव किया जाता है उसे- [तथा] (हे भव्य!) जैसा है वैसा [गृहाण] ग्रहण कर। (वह तेरा पद है।)

टीका : वास्तव में इस भगवान आत्मा में बहुत से द्रव्य-भावों के मध्य में से (द्रव्यभावरूप बहुत से भावों के मध्य में से), जो अतत्स्वभाव से अनुभव में आते हुए (आत्मा के स्वभावरूप नहीं किन्तु परस्वभावरूप अनुभव में आते हुए), अनियत अवस्थावाले, अनेक, क्षणिक, व्यभिचारी भाव हैं, वे सब स्वयं अस्थायी होने के कारण स्थाता का स्थान अर्थात् रहनेवाले का स्थान नहीं हो सकने योग्य होने से

अपदभूत हैं; और जो तत्स्वभाव से (आत्मस्वभावरूप से) अनुभव में आता हुआ, नियत अवस्थावाला, एक, नित्य, अव्यभिचारी भाव (चैतन्यमात्र ज्ञानभाव) है, वह एक ही स्वयं स्थायी होने से स्थाता का स्थान अर्थात् रहनेवाले का स्थान हो सकने योग्य होने से पदभूत है। इसलिए समस्त अस्थायी भावों को छोड़कर, जो स्थायीभावरूप है ऐसा परमार्थरसरूप से स्वाद में आनेवाला यह ज्ञान एक ही आस्वादन के योग्य है।

भावार्थ : पहले वर्णादिक गुणस्थान पर्यन्त जो भाव कहे थे वे सब, आत्मा में अनियत, अनेक, क्षणिक, व्यभिचारी भाव हैं। आत्मा स्थायी है (–सदा विद्यमान हैं) और वे सब भाव अस्थायी हैं इसलिए वे आत्मा का स्थान नहीं हो सकते अर्थात् वे आत्मा का पद नहीं हैं। जो यह स्वसंवेदनरूप ज्ञान है वह नियत है, एक है, नित्य है, अव्यभिचारी है। आत्मा स्थायी है और ज्ञान भी स्थायी भाव है इसलिए वह आत्मा का पद है। वह एक ही ज्ञानियों के द्वारा आस्वाद लेने योग्य है।

गाथा - २०३ पर प्रवचन

अब यहाँ पूछते हैं कि (हे गुरुदेव!) वह पद क्या है? आप पद की बहुत व्याख्या करते हो। वह पद क्या है ? ऐसा प्रश्न जिसके हृदय में से आया है, उसे उत्तर दिया जाता है। आहाहा! क्या कहते हैं ? साधारण सुनने आया हो और गरज नहीं है, उसे यह उत्तर नहीं देते, परन्तु जिसे अन्तर में (प्रश्न) आया कि प्रभु! यह पद क्या है ? आहाहा! कहाँ है आत्मा ? और कैसी चीज़ है ? प्रभु! ऐसा जिसे हृदय से उद्गार, आवाज, पूछने की आवाज आयी है, उसे उत्तर देते हैं, ऐसा कहते हैं। आचार्य ऐसा कहते हैं, उसे हम उत्तर देते हैं। आहाहा!

आदम्हि दव्वभावे अपदे मोत्तूण गिण्ह तह णियदं।
थिरमेगमिमं भावं उवलब्भंतं सहावेण।।२०३।।

जीव में अपद्भूत द्रव्यभाव को, छोड़े ग्रह तू यथार्थ से।
थिर, नियत, एक हि भाव यह, उपलभ्य जो हि स्वभाव से।।२०३।।

टीका : वास्तव में इस भगवान आत्मा में... आहाहा! लो, यहाँ से उठाया। भगवान आत्मा... देखा ? आहाहा! इसकी महिमा का पार नहीं, जिसके चैतन्य चमत्कार

की शक्ति का अगाध समुद्र भरा है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा। आहाहा! **बहुत से द्रव्य-भावों के मध्य में से (द्रव्यभावरूप बहुत से भावों के मध्य में से), जो अतत्स्वभाव से अनुभव में आते हुए (आत्मा के स्वभावरूप नहीं किन्तु परस्वभावरूप अनुभव में आते हुए),...** एक बात। **अनियत अवस्थावाले,...** यह पुण्य और पाप तथा उसके फल सब अनियत है, कायम रहनेवाली चीज़ नहीं है। आहाहा!

पहले क्या कहा? **बहुत से द्रव्य-भावों के मध्य... जो अतत्स्वभाव से अनुभव में आते हुए...** एक बोल कहा। रागादि अतत्स्वभाव है। तत् स्वभाव नहीं। **अनियत अवस्थावाले,...** है। एकरूप रहनेवाले नहीं, अनियत—निश्चय रहनेवाली चीज़ नहीं। आहाहा! **अनेक,...** है। तीसरा बोल। रागादि, पुण्यादि भाव अतत्स्वभाव है, अनियत है, अनेक है और **क्षणिक,...** हैं और **व्यभिचारी भाव हैं,...** आहाहा! राग अपना मानता है, वह व्यभिचारी जीव है। आहाहा! समझ में आया?

व्यभिचारी भाव हैं,... यह दया, दान, व्रत के परिणाम अपने मानना, वह व्यभिचारी जीव है, आहाहा! गजब बात है। करोड़ोंपति सेठिया हो और उसका लड़का हो, स्त्री / कन्या अच्छे घर की और खानदान की हो परन्तु जब वह पुत्र व्यभिचार में चढ़ गया हो और अपने सन्दूक में से माल लेकर व्यभिचारी को दे तो उसके पिताजी कहते हैं, भाई! घर में स्त्री महाखानदान की लड़की है, सिर ऊँचा करती नहीं, आँख ऊँची (करती नहीं), यह भरा बर्तन छोड़कर, प्रभु! पिता उससे कहते हैं। हैं? अरे! घर में लड़की, कन्या अच्छे घर की है, वह भरा बर्तन छोड़कर... भरयू भाणूं, समझ में आया? और वह किसी जगह व्यभिचार में बापू! जाता है, भाई! यह घर अब नहीं ठहरेगा? तू सन्दूक में से माल भी ले जाता है, मुझे खबर है। उसी प्रकार जगतपिता त्रिलोकनाथ जगत को कहते हैं कि हे आत्मा! आहाहा! तेरे अन्दर खानदान की चीज़ पड़ी है न! उसे छोड़कर तू राग के व्यभिचार में चढ़ गया, प्रभु! तेरी शोभा नहीं है, वह घर नहीं टिकेगा। आहाहा! फिर लकड़ी मारे? ऐसी करुणा। आहाहा! लक्ष्मीचन्दभाई! ऐसा कि सन्त कहीं लकड़ी मारे? प्रभु! यह तू व्यभिचार में चढ़ गया, भाई! आहाहा! खानदान की लड़की घर में है, उसे छोड़कर निम्न कुल की लड़की के साथ चलने लगा, प्रभु! इसी प्रकार यह खानदान निधान अन्दर पड़ा है, उसे छोड़कर राग और पुण्य और पाप के व्यभिचार में चढ़ गया, नाथ! आहाहा! देखो! आचार्य की करुणा तो देखो! हैं? आहाहा! ऐसा है।

वह गाना नहीं गाया था ? अभी रमेशभाई ने गाया था न ? यह तेरे दुःख देखकर ज्ञानी को रुदन आता है। आहाहा! भाई! ऐसे दुःख, बापू! आहाहा! और यहाँ किंचित् थोड़ी सुविधा होवे और ठीक होवे, वहाँ मानो हम बड़े सुखी हैं। धूल में भी नहीं है, सुन न! पागल है, बाहर की पदवी के स्थान को तू अपना मानता है (तो तू) व्यभिचारी है। आहाहा! है ? **व्यभिचारी भाव हैं,...**

वे सब स्वयं अस्थायी होने के कारण... आहाहा! रागादि, पुण्यादि के भाव और सब फलादि **वे सब स्वयं अस्थायी होने के कारण...** कायम नहीं रहने के कारण **स्थाता का स्थान अर्थात् रहनेवाले का स्थान नहीं हो सकने योग्य होने से...** आहाहा! अस्थायी होने से स्थायी का स्थान, रहनेवाले का वह स्थान नहीं है। आहाहा! क्या कहा ? राग दया, दान, व्रतादि के फल सब अस्थायी हैं। वे स्थाता का स्थान नहीं है। वह रहनेवाले का स्थान नहीं है। जिसे कायम रहना है, उसका वह स्थान नहीं है। वह तो भटकने का स्थान है। आहाहा! स्थाता का, स्थाता अर्थात् स्थिर होने का, वह स्थान नहीं है।

अपदभूत हैं;... इस कारण से अपदभूत है; **और जो तत्स्वभाव से (आत्मस्वभावरूप से) अनुभव में आता हुआ,...** आहाहा! तत्स्वभावरूप से (अर्थात्) ज्ञान और आनन्दस्वभाव से अनुभव में आता हुआ। ज्ञान और आनन्द का अनुभव करनेवाला, यह तत्स्वभाव का अनुभव है; वह रागादि का अनुभव, वह अतत्स्वभाव है। आहाहा! है ? **(आत्मस्वभावरूप से) अनुभव में आता हुआ,...** आनन्द, ज्ञान, शान्ति और स्वच्छता तो आत्मस्वभाव का अनुभव है। आहाहा! वह स्थायी है। स्थाता का स्थान है। वह रहनेवाले का स्थान है। आहाहा! कैसी टीका की है! तत्स्वभाव अनुभव में आता हुआ **नियत अवस्थावाला,...** है ? वह वस्तु त्रिकाली नियत है तो उसकी अवस्था है, वह भी नियत ही रहनेवाली है। आहाहा! **एक, नित्य, अव्यभिचारी भाव...** है। आहाहा! **वह एक ही स्वयं स्थायी होने से...** एक ही प्रकार का जो ध्रुव स्थान, वह **स्थाता का स्थान अर्थात् रहनेवाले का स्थान हो सकने योग्य होने से पदभूत है। इसलिए समस्त अस्थायी भावों को छोड़कर, जो स्थायीभावरूप है...** स्थायी भावरूप है, **ऐसा परमार्थरसरूप से स्वाद में आनेवाला यह ज्ञान एक ही आस्वादन के योग्य है।** विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)